प्राचीन भारत में नारी की दषा

– डॉ. महेन्द्र चौधरी
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग
सेठ आर.एल.सहरिया राजकीय महाविद्यालय, कालाडेरा (जयपुर)

किसी भी राष्ट्र का उत्थान तथा पतन उस राष्ट्र की महिलाओं की स्थिति पर काफी अंषों में निर्भर करता है। जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि ''मुझे पूर्ण विष्वास है कि आज भारत की प्रगति उसकी महिलाओं की स्थिति से मापी जा सकती है.।[1]

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। समाज में उनका आदर और सम्मान प्राचीन काल से आदर्षात्मक तथा मर्यादायुक्त था। उनकी स्थिति पुरूषों के समान थी। भारतीय धर्मषास्त्र में नारी सर्व–षक्ति–सम्पन्ना मानी गई तथा विद्या, ममता, यष और सम्पति का प्रतीक समझी गई। मनुस्मृति में लिखा है कि जहाँ नारियों को पूजा जाता है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ नारियों के साथ दुर्व्यवहार होता है या उन्हे पूजा नहीं जाता, वहाँ सभी कार्य निष्फल होते है।[2]

नारी पुरूष की 'षरीरार्द्ध' और 'अर्द्धांगिनी' मानी गई तथा 'श्री' और 'लक्ष्मी' के रूप में वह मनुष्य के जीवन को सुख और समृद्धि से दीप्ति और पुंजित करनेवाली कही गई।[3] शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि पत्नी पति की आत्मा का आधा भाग है। जब तक मनुष्य पत्नी प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक प्रजोत्पादन न होने से वह अपूर्ण रहता है।[4]

नारी की दषा में समय के अनुरूप परिवर्तन होता रहा है। उसकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर पूर्वमध्ययुग तक अनेक उतार–चढ़ाव आये तथा उसके अधिकारों में उसके अनुसार परिवर्तन होते रहे। वैदिक युग में उनकी अवस्था अत्यंत उन्नत तथा परिष्कृत थी, किन्तु परवर्तीकाल में उनकी स्थिति में गिरावट आई। वैदिक काल में वह स्वतन्त्रतापूर्वक षिक्षा ग्रहण करती थी और स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करती थी। पुरूषों की तुलना में वह किसी प्रकार निम्न नहीं थी। नववधू श्वसुर–गृह की साम्राज्ञी होती थी।[5] षिक्षा के क्षेत्र में उसका स्थान पुरूषों के समकक्ष था। षिक्षिता कन्या की प्राप्ति के लिए विषेष अनुष्ठान की आयोजना की जाती थी।[6]

वस्तुतः वैदिक युग में स्त्री जितनी स्वतन्त्र और मुक्त थी, उतनी परवर्ती काल के किसी भी युग में नहीं थी। शिक्षा, ज्ञान, यज्ञ आदि विभिन्न क्षेत्रों में वह निर्विरोध स्वच्छन्दतापूर्वक सम्मिलित होती तथा सम्मानपूर्वक आदर प्राप्त करती थी। उस युग में ऐसी अनेक विदुषी स्त्रियाँ थीं, जिन्होनें ऋग्वेद और अन्य वेदों की अनेक ऋचाओं का प्रणयन किया था। लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिक्ता, घोषा आदि ऐसी ही पण्डिता स्त्रियाँ थी। 'ब्रह्मयज्ञ' में जिन ऋषियों की गणना की जाती है उनमें सुलभा, गार्गी, मैत्रेयी आदि विदुषियों के भी नाम लिये जाते हैं। सामाजिक और धार्मिक उत्सवों, समारोह में वे अलंकृत होकर बिना किसी प्रतिबंध के उन्मुक्त होकर हिस्सा लेती थी।[7] पुरूषों के साथ वे यज्ञ में सम्मिलित होकर कार्यविधि संचालित करती थीं। बिना उनके सहयोग के यज्ञ पूरा नहीं माना जाता था। वे यज्ञ की अधिकारिणी थी।[8] रोमशा, अपाला, उर्वशी, विश्ववारा, सिकता, निबावरी, घोषा, लोपामुद्रा आदि पंडिता स्त्रियाँ इनमें अधिक प्रसिद्ध हैं। पति के साथ समान रूप से वे यज्ञ में सहयोग करती थी।[9] सूत्र काल तक भी स्त्रियाँ यज्ञ सम्पादित किया करती थी।[10] राम के युवराज पद पर अभिषेक के समय तक कौसल्या ने यज्ञ किया था।[11]

वैदिक युग में छात्राओं के दो वर्ग थे, एक सद्योवधू और दूसरा ब्रह्मवादिनी। सद्योवधू वे छात्राएं थी जो विवाह के पूर्व तक कुछ वेद –मंत्रों और याज्ञिक प्रार्थनाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेती थीं तथा ब्रह्मवादिनी वे थीं जो

अपनी शिक्षा पूर्ण करने में अपना जीवन लगा देती थीं। इस प्रकार की स्त्रियाँ जीवनपर्यन्त अध्ययन में लीन रहती थीं और विवाह नहीं करती थी। ऋषि कुशध्वज की कन्या वेदवती ऐसी ही ब्रह्मवादिनी स्त्री थी।[12] अध्ययन और मनन के क्षेत्र में स्त्रियों की रुचि बराबर बढ़ती गई। दर्शन जैसे गूढ़ और गम्भीर विषय में भी वे पारंगत होने लगीं। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी विख्यात दार्शनिका थी जिसकी रुचि सांसारिक वस्तुओं और अलंकारों में न होकर दर्शनशास्त्र में थी।[13] मत्स्य पुराण में ऐसी कन्याओं का सन्दर्भ भी मिलता है जिन्होनें तपश्चर्या से अभीष्ट की प्राप्ति की थी।[14]

प्राचीन काल में स्त्रियाँ नृत्य, गाायन और संगीत में भी महारत रखती थी। नृत्य और गीत के द्वारा लोगों को प्रफुल्ल रखती थी।[15] नृत्य और संगीत के साथ साथ स्त्रियाँ चित्रकला में भी प्रवीणता रखती थी। बाणासुर के मंत्री कुप्माण्डं की कन्या की सखी चित्रलेखा ने चित्रपट पर अनेक देवों, गंधर्वो और मनुष्यों की आकृतियों का अंकन किया था, जिसमें अनिरुद्ध का भी चिताकर्षक चित्र था।[16]

स्त्रियों की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर समाज में उनका सम्पति विषयक अधिकार स्वीकार किया गया तथा उन विशेष परिस्थितियों का भी विश्लेषण किया गया है जिनके कारण सम्पति में वे अपना हिस्सा प्राप्त करती थीं। वैदिक काल में कुछ ऐसे विवरण है, जो उसके उतराधिकार पर आक्षेप करते है।[17] किन्तु यह अपवाद ही हैं। सम्पति में प्रायः उसका हिस्सा रहता रहा है। दत्तक पुत्र से श्रेष्ठ पुत्री समझी जाती थी।[18] अपने भाई के न रहने पर वह अपने पिता की सम्पति की उत्तराधिकारी मानी जाती थी।[19] इससे यह पुष्ट होता है कि वैदिक युग में स्त्री का सम्पति पर अधिकार स्वीकार किया जाता था।

वसिष्ठ, गौतम और मनु ने उत्तराधिकारिणी के रूप में पुत्री का कहीं नाम नहीं लिया है।[20] परन्तु इसके विपरीत दूसरे शास्त्रकारों ने अत्यन्त उदारतापूर्वक पुत्री के उत्तराधिकारी होने के मत का प्रतिपादन किया है। महाभारत में उसके इस स्वत्व को पुत्र के समकक्ष स्वीकार किया गया है।[21] कात्यायन जैसे व्यवस्थाकारों ने अपने विचारों का विकास किया तथा पुत्र के अभाव में पुत्री के उत्तराधिकारी होने के मत का प्रतिपादन किया।[22] निष्चय ही पुत्र के रहते हुए कन्या का सम्पति में अधिकार वैदिक काल से रहा है और परवर्ती धर्मषास्त्रकारों ने भी इसे स्वीकार किया है।

समय के साथ साथ नारी की स्थिति में निम्न और दयनीय हो गई जिससे वे निःसहाय, परतंत्र और निर्बल बन गई। उन पर अनेक प्रकार के बंधन और अवरोध लगाए गए। धर्मषास्त्रकारों ने उनकी राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और वैयक्तिक सभी पर प्रतिबंध लगाए। जन्म से मृत्यु तक उन्हें पुरूष के नियन्त्रण में रखने के लिए निर्देषित किया गया। कन्या, पत्नी और माता जैसी स्थितियों में वे क्रमषः पिता, पति और पुत्र द्वारा नियंत्रित और संरक्षित मानी गई।[23] बाद में पर्दा, सती, दहेज आदि कई कुप्रथाओं ने नारी की स्थिति को और अधिक निम्न बना दिया । नारी की दषा में गिरावट का सबसे बड़ा कारण भारतीय समाज की पुत्रकामी मानसिकता के कारण आरम्भ से ही पुत्र को पुत्री की तुलना में अधिक महत्व दिया जाता रहा है। अतः नारी की स्थिति गिरती चली गई, इसके बावजूद प्राचीन भारत में नारी की दषा भारतीय संस्कृति का गौरवपूर्ण अध्याय है।

सन्दर्भ –

1. सेन, एन. बी., प्रोगेस ऑफ वीमन्स एजूकेषन इन फ्री इण्डिया, पृ 80.
2. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।
   यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्त त्राफलाः क्रियाः।। – मनुस्मृति, 3.55–59.
3. यावन्न विन्दते जायां तावदर्द्धो भवेत् पुमान्। नार्द्ध प्रजायते सर्व पुंजायेतेत्यपि श्रुतिः।। – व्यास स्मृति, 2.14.
4. एतावानेव पुरूषो यज्जायाऽऽत्मा प्रजेति ह। विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृतांगना।। – शतपथ ब्राह्मण, 5.2.1.10.

5. सम्राज्ञी स्वसुरे भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु। – ऋग्वेद, 10.85.46.
6. अथ य इच्छेद् दुहिता मै पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमष्नीयतामीष्वरौ जनयितवै। – वृहदारण्यक उपनिषद् 6.4.17.
7. अनतिपृश्न्याँ वै देवतामपिपृच्छसि। – वृहदारण्यक उपनिषद् 3.6.1.
8. योषितो यज्ञियाः इमाः। – अथर्ववेद, 2.36.1.
9. या दम्पति सुमनसा आ च धावतः। देवा सो नित्यया शिरा। – ऋग्वेद, 8.3.1.
10. स्त्रियश्चोयपजेरम्नाचरित्वात्। – पारस्कर गृह्यसूत्र 2.20.
11. सा क्षौम वसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा। अग्निं जहोति स्म तदा मन्त्रविस्कृतमंगला।। – रामायण, 2.20.15.
12. कुशध्वजो नाम पिता ब्रह्मर्षिरमितप्रभः। बृहस्पति सुतः श्रीमान् बद्धया तुल्यों बृहस्पते।। – रामायण, 7.17.
13. सा होवाच मैत्रेयी। येनाहं नामृता स्याम् किं तेनाहं कुर्यामिति। – वृहदारण्यक उपनिषद् 2.4.5.
14. एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिवि विश्रुता। योगिनी योगमाता च तपश्चक्रे सुदारुणम्।। – मत्स्यपुराण, 15.5–6.
15. नारी वा कुरुते या तु विशोकद्वादशीव्रतम्। नृत्यगीतपरा नित्यं सापि तत्फलमापतुयात्।। – मत्स्यपुराण, 82.29.
16. ततः पटे सुरान्दैत्यानान्धर्वा श्च प्रधानतः। मनुष्यांश्च विलिख्यास्यै चित्रलेखा व्यदर्शयत्।। – विष्णु पुराण, 5.32.22.
17. ता (स्त्रियः) नात्मनष्चैषत न दायस्य चैषत। – शतपथ ब्राह्मण, 4.4.2.13.
18. न हि ग्रभायारणः सुषेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ। – ऋग्वेद, 7.4.8.
19. अभ्रातेव पुंस एति प्रतीचो गर्तारुगिव सनये धनानाम।– ऋग्वेद, 1.12.4.
20. वसिष्ठ धर्मसूत्र 15.7, गौतम धर्मसूत्र 28.21 और मनुस्मृति 9.185.
21. यथेवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा। तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यो कथमन्या धनं हरेत्।। – महाभारत, 13.80.11.
22. पत्नी पत्युर्धनहरी या स्याद्व्यभिचारिणी। तदभावे तु दुहिता यद्यनूढा भवेतदा।। – कात्यायन 2.135
23. पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।। – मनुस्मृति 9.3.